INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 7 | AUGUST - 2022

तारसप्तक की कविताओं में पूँजीवादी सम्यता और वर्ग विभाजित समाज का अध्ययन

लक्ष्मी कान्त मिश्रा[1] & डॉ. लता द्विवेदी[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).

सारांश –

सप्तक के कवियों की रचना में सामाजिक दृष्टि एवं कवियों की सामाजिक चेतना का प्रभाव वैयक्तिक एवं आत्मनिष्ठ चेतना की तुलना में अधिक मूल्यवान है सप्तक के कवियों की रचनाओं में कवियों के भागपरक दृष्टिकोण के स्थान पर मानवीय संघर्ष के महत्व को सजगता के साथ उपस्थिति किया गया है। कविता में सामाजिक दृष्टि और समाज चेतना का महत्व आज का सत्य है। वे कवि दग्ध प्राणियों के उद्वार के लिए आकुल लगते हैं। किसी भी रचना में शक्ति तभी आती है, जब वह सामान्य जनता के विकास अनुरूप हो। इसका प्रमाण भी हमें सप्तक के कवियों की रचनाओं में मिल जाता है। समाज चेतना की यह भावना को जन–जन के भेद को मिटाती है उसमें समाज चेतना का आत्मविश्वास भरा है।

मुख्य शब्द – सप्तक, कवि, सामाजिक दृष्टि एवं पूँजीवादी सम्यता।

प्रस्तावना –

राजनैतिक प्रतिबद्धता को साहित्य के लिए अशुभ मानते हुए भी उन्होंने लोकधर्मिता को काव्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माना। शुक्ल जी के लोकधर्म के प्रतीक तुलसीदास के स्थान पर द्विवेदी जी ने कबीर को लोकधर्म का प्रतीक माना। तुलसी के समन्वयवाद की तुलना में कबीर की क्रांतिकारिता की उन्होंने प्रशंसा की।[1] उनकी परंपरा को ही अधिक जीवंत और शक्तिशाली मानकर उन्होंने वास्तव में जनता की परंपरा का साथ दिया।

डॉ. नगेन्द्र रसवादी मूल्यों को मानने वाले समीक्षक हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य जीवन की भावगत व्याख्या एवं अन्तर्मुखी साधना है। उनके अनुसार– "स्वभाव से ही साहित्यकार में अंतर्मुखी प्रवृत्ति का प्राधान्य होता है। वह जितना महान् होगा, जिसका सामाजीकरण असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य हो जायेगा।" वे मानते है कि "गोर्की, इकबाल, मिल्टन आदि का विश्लेषण असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर देगा कि उनके भी साहित्य में जो कुछ महान् है वह उनके दुर्दमनीय अहं का ही विस्फोट है, साम्यवाद, 'इस्लाम' या 'प्यूरीटन' मत की अभिव्यक्ति नहीं। महान् साहित्य असाधारण प्रतिभा के असाधारण क्षणों की सृष्टि है।"[2]

इसी मान्यता के कारण वे यह भी मान बैठते हैं कि सामाजिक दायित्व के प्रति जागरूकता कवि व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष को समृद्ध बनाती है और यही आवश्यक नहीं कि समृद्धि उसे बौद्धिक एवं भावनात्मक ऐश्वर्य प्रदान करे। उनकी दृष्टि में जिस सामाजिक दायित्व की भावना से लेखक 'स्वार्थ साधना की संकुचित

भूमि से उठकर' अपने 'अहं भाव का उन्नयन और विस्तार' करता है और जिससे 'उसके अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की ही सिद्धि होती है' वह नैतिक मूल्य है, साहित्यिक नहीं।"[3]

साहित्य को मुख्यतः आत्माभिव्यक्ति और आत्माभिव्यक्ति को नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों से स्वतंत्र मानते हुए भी डॉ. नगेन्द्र इस बात को अस्वीकार न कर सके कि लेखक के "आत्म की क्षति होगी और उसी अनुपात से उसके साहित्य के वस्तु–तत्व की भी हानि होगी।"[4]

साधारणीकरण संबंधी अपने निबंध में भी उन्होंने यह स्वीकार किया कि "कवि वह होता है जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सके। दूसरे शब्छों में जिसे लोक ह्रदय की पहचान हो।"[5] उनकी इस मान्यता के अनुसार उनका साधारणीकरण अहं के समाजीकरण पर अनायास बल देता है। अहं के सामाजीकरण पर बल एवं लोक ह्रदय की पहचान को आवश्यक मानकर प्रकारानतर से उन्होंने कवि की समाजिकता का आदर ही किया है। बिना उपयुक्त सामाजिकता एवं बहिर्मुखता के न तो अहं को सामाजीकरण हो सकता है, न लोक ह्रदय की सच्ची पहचान, न श्रेष्ठ काव्य की रचना। सप्तक के कवियों की रचनाओं में जिन प्रगतिशील मूल्यों को प्रश्रय दिया गया है, उसका सीधा संबंध लेखक की सामाजिक चेतना से है। प्रसिद्ध प्रगतिशील आलोचक रामविलास शर्मा के अनुसार 'कलाकार की सौन्दर्य मूलक प्रवृत्ति उसके समूचे ऐतिहासिक विकास का परिणाम होती है।

मुक्तिबोध मुख्य रूप से कवि हैं किन्तु वे प्रगतिशील चिंतक भी हैं। उनके चिंतन का आज की समीक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। वे भी रवादी–भाववादी साहित्य के स्थान पर उस साहित्य को श्रेष्ठ मानते हैं जो जनता का पक्षधर है इसके लिए वे समकालीन यथार्थ के वस्तुमूलक आंकलन पर विशेष बल देते हैं। सामाजिक यथार्थ के विश्लेषण से ही यह पता लगाया जा सकता है कि समाज की कौन–सी प्रवृत्ति या उपप्रवृत्ति किस वर्ग के हित से जुड़ी है, किस प्रवृत्ति या उपप्रवृत्ति का साथ देना है। वे सर्जक से राजनीतिक जागरूकता एवं पक्षधरता की अपेक्षा रखते हैं।

अज्ञेय की अनेक आरंभिक रचनाओं में प्रगतिशील रूझान के दर्शन होते हैं। सपतक में प्रकाशित 'जनाह्वान' एवं वर्गभावना सटीक' कविताओं को सीधे वर्गभावना से सम्बद्ध कहा जा सकता है। 'जनाह्वान' कविता में जिस 'आततायी' को रोककर कवि अपने 'क्रुद्ध वीर्य की पुकार' सुनाना चाहता है, वह आततायी पूंजीपतिशोषक वर्ग से संबंधित है। कवि अपने आह्वान को 'जन' का आह्वान कहता है। ललकारने वाला जिस जन का प्रतिनिधि है, वह 'दीन–दुखी पद दलित पराजित' है, जिसको ललकारा गया है उसका 'भूतकाले पापों' से भरा है और कवि उसी में लाल आग को प्रवहमान देखना चाहता है।[6] वर्गभावना : सटीक में बात व्यंग्यात्मक लहजे में अमीरों की ओर से कही गई है। यह वह वर्ग है जो स्वयं की 'खड्गधार' और 'न्यायकार' है। तुच्छतम जन' से वह 'भ्रमभार' एवं 'सुखभार' जिस रूप में बांटता है[7], उससे उसका शोषक रूप स्पष्ट हो जाता है।

व्यक्तित्व समाज सापेक्ष है और उसका विकास सामाजिक संबंधों पर निर्भर करता है। इसी परिवेश में सप्तक की रचनाओं में सामजचेतना का मूल्यांकन अधिक सार्थ लगता है। प्रगतिशील कवि की सामाजिकता की बुनियाद वर्ग चेतना में निहित है। 'सप्तक' के कवियों की आरंभिक रचनाओं में वर्ग चेतना न्यूनाधिक मात्रा में सभी कवियों में विद्यमान है– उस समय के उन कवियों में जो बाद में प्रयोगवादी कहलाये और उनमें भी जो युगव्यापी संशय से घिरे होने पर भी प्रगतिशील चेतना का वहन कर रहे थे और जिन्हें बाद में भी स्पष्टतः प्रगतिशील चेतना एवं मूल्यों का साथ दिया। सप्तक के कवियों की कविताओं में पूंजीवादी सभ्यता और वर्ग–विभाजित समाज की जो तस्वीर मिलती है, उसका यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संदर्भ है। यह नहीं कि बाद में उनकी कविताओं में पूंजीवादी सभ्यता एवं वर्ग–विभाजित समाज की समस्यायें गायब हो गई हैं किन्तु बाद में प्रत्येक कवि का विकास एक जैसा नहीं हुआ। ऐसा होना संभव भी नहीं था क्योंकि 'सप्तक' के कवि आरम्भ में भी एक ही पथ के सही नहीं थे। युगव्यापी प्रभाव से उत्पन्न समानता को छोड़ दें तब भी उनमें पर्याप्त भिन्नता थी और बाद में प्रत्येक कवि का विकास जिस दिशा में हुआ और वे जिस मंजिल पर पहुंचे, वह एक–दूसरे से पर्याप्त भिन्न है।

विश्लेषण –

सन् 1940 के आसपास मुक्तिबोध की काव्य–चेतना बदलने लगी एवं उनका झुकाव मार्क्सवाद की ओर होने लगा। 1940–42 के बीच प्रकाशित 'पूंजीवादी समाज के प्रति' एवं 'नाशदेवता' कविताएँ उनके इस बदलाव को पूरी स्पष्टता से सूचित करती हैं। 'पूंजीवादी समाज' के प्रति कविता बिना किसी लाग लपेट के कवि

पूंजीवादी समाज को 'तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ' कहता हुआ 'तेराध्वंस केवल एक तेरा अर्थ' जैसी क्रांतिकारी विचारधारा प्रस्तुत करता है।[8] 'नाश देवता' कविता में कवि 'नाश देवता' का आह्वान करता है और उसे अपने शिर पर पैर रखकर तीनों जग नाम लेने की बात कहता है। उसे लगता है कि 'ध्वंस महाप्रभु' के तीक्ष्ण वाणों से 'नूतन सर्जन' होगा।[9]

सन् 1944 के बीच लिखी गई अनेक कविताओं, यथा 'जन–जन का चेहरा एक', 'दमकती दामिनी', 'नया आदित्य', 'मध्य वित्त', 'हे प्रखर सत्य' आदि कविताओं में प्रगतिशील चेतना को वाणी मिली है। 'जन–जन का चेहरा एक' में कवि स्पष्ट घोषणा करता है कि 'जन चाहे जिस देश, प्रांत, पुर का हो' उसका चेहरा एक है, उसको वर्ग विभाजित समाज में 'जनता का दल' और 'जन शोषक–शत्रु का दल अलग–अलग दीख जाता है। उसे 'शोषक खूनी और चोर' की एकता भी लिखलाई पड़ जाती है। वह जलते हुए लाल भयानक सितारे 'विकराल–सा इशारा' देखता है। 'यह इशारा' उसे जन–जन की मुक्ति के लिए युद्ध की ओर उकसाता है। जन के अंतर की उषा में 'अति क्रुद्ध ज्वाला उठती हुई दिखलाई पड़ती है और उसे क्रांति लक्ष्य की ओर उन्मुख करती है।[10] 'दमकती दामिनी कविता में कवि अपने को 'क्रांति युग का एक छोटा कवि कहता है। उसके हृदय में 'युग क्रांति का विक्षोभ' जल रहा है।'[11] 'मध्य–वित्त' कविता में कवि 'पूंजीवादी स्याह रेल के नीचे' मानव को लोहे की पटरी पर मरा हुआ पाता है। वर्ग–वैषम्य का प्रभाव कलाकारों और प्रेमियों पर भी पड़े बिना नहीं रहता। मुक्तिबोध की निम्न पंक्तियां स्पष्टतः कलाकारों के शोषण एवं धन कुबेरों की अनैतिक रंगरेलियों की ओर संकेत देती हैं–

'बेंच रहा है कालिदास सड़कों पर कंधी
लगा चाय दूकान यक्ष सबका है सगी।'
यथा– विरहिणी भार्या धन–कुबरे घर रंग विरंगी।'[12]

'हे प्रखर सत्य' कविता के दूसरे खंड में कवि ने मध्य वर्ग को 'उदरंभरि जिंदगी उसकी अवसरवादिता आदि का संकेत दिया है। कवि को भारतीय वास्तविकता 'भीषण दुःस्वप्नों सी दिखलाई पड़ती है। वह शोषिता 'अधनंगी मां' एवं 'नग्न बच्चे' को धुंध भरी सुबह से ही 'बबूल पेड़ों के नीचे', अन्न के दाने, चिथड़े आदि खोजते देख लेता है।[13]

सप्तक के कवियों में गिरिजा कुमार माथुर ऐसे कवि हैं जो आरंभ से ही रंग, इस और रोमान के प्रति विशेष उन्मुख रहे हैं। उनके आरंभिक काव्रू संकलन 'मंजीर' (1941) की भावभूमि रोमानी है। 'मंजीर' में 'वे मुख्यतः एक कोयल भाव प्रवण गीतकार' के रूप में सामने आते हैं।[14]

इस संकलन में 'कवि आदर्शों की सतह पर खड़ा है, भीतर की उदासी उसे गाने के लिए विवश करती है..... वह जो गुनगुनाता है, उसका एक मात्र अर्थ है प्यार।'[15]

यद्यपि इस संकलन को रचनाओं में कवि छायावादी रंगीनी से अपना पल्ला नहीं छुड़ा सका है तथापि कई कविताओं में भाव–वस्तु की यथार्थपरकता दृष्टव्य है। महत्व की बात यह है कि 'मंजीर' का 'कोमल भाव–प्रवण गीतकार' रंग, रस, रोमान की कोमल अनुभूतियों में ही नहीं डूबा रहता, वह दूषित समाज व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट कर देने का संकल्प करता है। वह अपने को 'अग्नि बादल' के रूप में देखता है और अपने काल के 'मुदृल' प्राण को आज नाश के लिए उद्यत पाता है। अब वह मधु पीने को उत्सुक नहीं, क्योंकि उसे हलाहल पी लिया है।[16] वह अपमान का बदला 'बर्छियों की नोक से' लेना चाहता है और 'रक्त लेकर रक्त के बदले, हृदय अपना भरेंगे' को अपना आदर्श बनाता है। 'युग वैतालिक' कविता में वह अपनी कला के माध्यम से सब कुछ कर सकने का दम भरता है। उसका विश्वास है कि कल तक कला के द्वारा वह 'फूल' लाता रहा है किन्तु अब अंगार भी ला सकता है।[17]

'मंजीर' का कवि वर्ग विभाजित समाज में दलितों के शोषण से पूरी तरह परिचित है। वह जानता है कि 'निर्बलों की तीक्ष्ण हड्डी पर' ही 'वैभव का प्रासाद खड़' हुआ है। 'रंग महल' उसे मानव के रक्त से रंजित दिखलाई देता है।[18] शोषितों का जीवन 'तड़पन, कराह, पीड़ा, सिसकन, जलन, प्यास, आदि से युक्त है।[19] वह यह जानना चाहता है कि मनुष्य का ऐसा 'दानवी' पतन क्यों हुआ। वह शोषकों को 'नर पिशाच' कहता है और जग में उनके 'तांडव नर्तन' को रोकना चाहता है।[20] 'अदन पर बम वर्षा' कविता समसामयिक घटना को लेकर लिखी गई है।[21]

नारी 'छवि' के आकर्षण पाश में भारत भूषण अग्रवाल कुछ इस प्रकार आबद्ध हुए कि अपनी प्रारंभिक रचनाओं में ही नहीं अपितु बहुत बाद की रचनाओं में भी बंधन मुक्त न हो सके। 1941 के उनका 'छवि के बंधन' काव्य संकलन प्रकाशित हुआ जिसमें 'नारी–सौंदर्य का आकर्षण और प्यार का वर्णन अधिक हुआ है इसमें कवि ने नारी के लिए 'कामिनी', 'रूपसि', 'प्राण' आदि संबोधन प्रस्तुत किया है तथा कवि ने नेत्रों में 'तिरता रूप', 'प्रणय–कंपन', 'स्नेह–सरिता' में नहा लेने की आकांक्षा' आदि स्पष्ट रूप से छायावादी प्रेम चेतना को ही प्रकट करते हैं।[22] दो–एक स्थलों पर कवि रूढ़ियों के प्रति भी संकेत देता हुआ प्रतीत होता है। 'लजीला प्यार' कविता में वह अपनी दुनिया को 'लौह दीवारों में बंदी' मानता है।[23] यही उसका प्रथम समाज बोध है– एक ऐसे समाज का बोध जो सामाजिक रूढ़ियों के नाम पर दो प्रेमियों को मिलने से रोकता है।

समय के साथ कवि की मनः स्थिति बदलने लगती है, प्रेम वह सफल नहीं होता, उसे कुंठा हाथ लगती है और क्रमशः 'छवि का बंधन' टूटने लगता है। वह अपने 'तरू कुमार' को जगाने की चेष्टा करता हुआ कहता है–

"तू 'एक अपरिचित की आशा में', जीवन क्यों खोता है? तू
'व्यर्थ अवसाद' छोड़ दे, 'तू जाग' और
'अपने इस अपार वैभव का मधु–पराग
वसुधा को दे दे।"[24]

तब कवि की आँखें खुली जाती हैं, वह जाग जाता है, चारों ओर दृष्टि–निक्षेपण करता है। उसके भीतर से निरंतर 'जागते राहे' की पुकार आने लगती है। इसी शीर्षक से प्रकाशित संकलन में संग्रहीत कविताओं में कवि का जागरण स्पष्टतः परिलक्षित होता है। जगने पर कवि को सामाजिक रूढ़ियों के साथ्ज्ञ वर्ग वैषम्य भी दिखाई पड़ता है। उसकी दृष्टि गरीबों की बस्ती में 'सुखिया' की समस्याओं पर पड़ती है।[25] थके हुए, शोषित रहित 'मिट्टी से सने मजदूर जन के हाँथ पर भी कवि की दृष्टि पहुंचती हैं। अब उसे कवि प्रेयसियों के गुलाबी हांथों का रहस्य मालूम हो चुका है। वह जानता है कि गुलाबी हांथों की शोषण वृत्ति ने ही मजदूरों के हांथों का रक्त चूस लिया।[26]

1940 के आसपास मुक्तिबोध की तरह भारत भूषण अग्रवाल भी 'मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हुए'।[27] आरंभ में मार्क्सवाद ने उन्हें इतना अधिक आकर्षित किया कि वे मार्क्सवाद को 'आज के समाज के लिए रामवाण' और अपने को स्पष्टतः 'कम्युनिष्ट' मानने लगे।[28] इसका परिणाम यह हुआ कि आरंभ की बहुत सी कविताओं में वे मार्क्सवादी 'सिद्धान्त वाणी के पद्यकार बन बैठे।[29] 'तारसप्तक' में प्रकाशित अपनी कविताओं के संबंध में नेमिचंद्र जैन लिखते हैं कि 'संस्कार और विवेक की कशमकश की चेतना ही इन कविताओं का विषय है। उनकी आरंभिक कविताओं में यह कशमकश विद्यमान है। 'साहित्य में प्रगतिशीलता में' विश्वास तथा 'उसके लिए सचेष्ट प्रयत्न' के पक्षपाती होने की बात भी उन्होंने कही है।[30] उनकी यह बात सही है क्योंकि 'तार–सप्तक' के प्रकाशन से पूर्व न सिर्फ वे प्रगतिशीलता के हामी हो गये थे बल्कि अपने मित्रों में गांधीवाद विरोधी प्रचार करते थे और उन्हें मार्क्सवाद का महत्व समझते थे।[31] इसका अर्थ यह नहीं कि नेमिचंद्र की आरंभिक कविताओं में प्रगतिशीलता अधिक प्रखर एवं मुखर हैं। वैचारिक धरातल पर वे चाहे प्रगतिशीलता एवं मार्क्सवाद के प्रचारक रहे हों, कविता में संस्कार और विवेक की कशमकश में प्रायः संस्कार ही हावी है, विवेक नहीं। परिणामतः उनकी कविताओं में प्रगतिशीलता का स्वर दबा–दबा–सा है। अधिक मुखर है– 'आंधी मुँदी हुई पलकों में 'मदिरा सा किसी' छवि का मीठा भार'[32] 'उचटा सा हृदय'[33], 'आकुल सी स्वर लहरी'[34], 'मन का एकाकीपन'[35], प्राणों में छाया हुआ 'बेमाप' एकांत[36] इत्यादि। विवेक कवि को जिस सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख करता है, उसके संकेत भी मिलते हैं। उसे बाहर की दुनिया में 'दुनिया में फैली घोर विषमता' दिखलाई पड़ती है और राजमहल की नींव में 'लाखों मंजूर' का बलिदान नजर आता है।[37] उसे पथ–प्रदर्शक के रूप में 'नव ज्वाल की भीषण प्रभा का लाल पावन रंग' लिए हुए, विद्रोही 'अस्थिर सितारा' दिखलाई पड़ता है। विवेक जब बहुत जोर मारता है, तब वह अपने मन को सब भटकना छोड़ पंथी'[38] का संदेश देता है और सर्वहारा का मुक्ति–पथ चुनने को उद्यत होता है। ऐसा ही मनः स्थिति में वह 'सुमुषि' को 'छवि के प्रणय गान' गाने से रोक देता है और उसका ध्यान विषमता, दैन्य आदि की ओर आकर्षित करता है।[39]

'एकांत' संकलन की 'शारदीया', 'छब्बीस–जनवरी', 'फिर–घिरे बादल' 'नींद नहीं आती है' आदि कविताएं उल्लेखनीय हैं। ये कविताएं 1946 तक की हैं। 'शारदीया' में शहर वर्ग वैषम्य का चित्रण किया गया है। इसी

प्रकार 'फिर घिरे आदलन' में वह कवि से मुक्ति संगर में भाग लेने एवं मार्ग दर्शक बनने की मांग करता है। 'नींद नहीं आती है', 'छब्बीस जनवरी आदि कविताओं में कवि सामाजिक वैषम्य को बड़ी तीव्रता से अनुभव करता है और उसे वाणी देता है। महत्व कीब बात यह है कि वह मार्क्सवादी सिद्धांत–वाणी का पद्यकार नहीं बनता बल्कि पूरी गंभीरता से वैषम्य का चित्रण करता है।

रामविलास शर्मा की जो कविताएं तारसप्तक में संकलित हैं उनमें न किसी 'छवि का मीठा भार' है न 'उचटा सा हृदय'। कवि का दिल और दिमाग पूरी तरह जन को समर्पित है। उसकी स्पष्ट और प्रखर प्रगतिशीलता का कारण यह है कि 'तारसप्तक' में संकलित होने पर भी वे मुख्यतः प्रगतिशील कवि है। 'तारसप्तक में संकलित उनकी अधिकांश कविताओं में प्रगतिशीलता का तत्व विद्यमान है। ग्रामीणजनों, किसानों आदि के चित्रण में कवि ने विशेष रूचि ली है। इस दृष्टि से 'कार्यक्षेत्र', 'कटकी', 'सिलहार' 'दिवा स्वप्न'। 'गुरूदेव की पुण्यभूमि' कविता में दुर्भिक्ष, महामारी और शोषण से उत्पीड़ित बंग भूमि का करुण चित्रण है। कवि को बंगाल 'चिता पर' जलता हुआ दिखलाई देता है। वह नवयुवकों को बंगाल की विभीषिका से लड़ने का आह्वान करता है। 'हड्डियों का ताप' कविता में परतंत्र देश के युवक का दारूण चित्र उतारा गया है। कवि को परतन्त्र भारत का युवक 'रक्तहीन, मांसहीन कंकाल' की तरह दिखलाई पडत्रता है। भारतीय युवकों के 'कपोलों पर' न तो 'रक्ताभा' है, न उनकी भुजाएं 'मांसल एवं बलिष्ठ' हैं। कवि को युग के उन नर कंकालों में विद्रोह की भावना बसी हुई दिखलाई पड़ जाती है।[40]

रामविलास शर्मा की आरंभिक कविताओं की विशेषता यह है कि कवि शोषण, अत्याचार, अन्याय, अपमान आदि को देखकर दौर्बल्य का अनुभव नहीं करता। वह शोषण, अत्याचार आदि के विरूद्ध पूरे विश्वास के साथ जूझने के लिए खड़ा दिखलाई देता है। उसमें भरपूर पौरूष विद्यमान है। कवि के इस पौरूष भरे व्यक्तित्व को देखते हुए भी संभवतः रघुनाथ विनायक तावसे ने उसे वैसवाड़े का 'निराला टाइप कवि' कहा है।[41]

रामविलास शर्मा के कवि व्यक्तित्व की विशेषता है, उसकी बहिर्मुखी वृत्ति। कवि का व्यक्तित्व अंतर्मन की समस्याओं, गुत्थियों में नहीं उलसता बल्कि सीधे सामाजिक समस्याओं की ओर उन्मुख होता है। यह प्रवृत्ति प्रभाकर माचवे में भी मिलती है, किन्तु निश्चित उद्देश्य के अभाव में उनकी बहिमुर्खता भटकती रहती है, जबकि रामविलास शर्मा में यह भटकाव नहीं है।

तारसप्तक के कवि आरंभ में प्रगतिशील रूझान रखते थे। यद्यपि प्रत्येक कवि की काव्य चेतना में उनका निजी वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है फिर भी प्रगतिशीलता के स्तर पर सभी समान नहीं हैं तो भी प्रगतिशील विचारों के प्रति उनका आग्रह स्पष्ट देखा जा सकता है।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'तार–सप्तक' के कवि आरंभ में प्रगतिशील रूझान रखते थे। यद्यपि प्रत्येक कवि की काव्य चेतना में उनका निजी वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है फिर भी प्रगतिशीलता के स्तर पर सभी समान नहीं हैं तो भी प्रगतिशील विचारों के प्रति उनका आग्रह स्पष्ट देखा जा सकता है। तारसप्तक के कवि आरंभ में प्रगतिशील रूझान रखते थे। यद्यपि प्रत्येक कवि की काव्य चेतना में उनका निजी वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है फिर भी प्रगतिशीलता के स्तर पर सभी समान नहीं हैं तो भी प्रगतिशील विचारों के प्रति उनका आग्रह स्पष्ट देखा जा सकता है।

संदर्भ –

[1] दूसरी परंपरा की खोज, पृष्ठ 19–21, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

[2] आस्था के चरण, पृष्ठ 268–69, डॉ. नगेन्द्र

[3] विचार और विवेचन, पृष्ठ 57, डॉ. नगेन्द्र

[4] वही, पृष्ठ 58, डॉ. नगेन्द्र

[5] रस–सिद्धांत, पृष्ठ 209, डॉ. नगेन्द्र

[6] तारसप्तक, पृष्ठ 274–75, अज्ञेय

[7] तारसप्तक, पृष्ठ 288, अज्ञेय
[8] मुक्तिबोध रचनावली–1, पृष्ठ 90, ग.मा. मुक्तिबोध
[9] वही, पृष्ठ 91
[10] वही, पृष्ठ 110–11
[11] वही, पृठ 118
[12] मुक्तिबोध रचनावली–1, पृष्ठ 176, ग.मा. मुक्तिबोध
[13] वही, पृष्ठ 194, 196
[14] विवेक के रंग, पृष्ठ 36, बालकृष्ण राव
[15] आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : गिरिजा कुमार माथुर, पृष्ठ 17, कैलाश वाजपेयी
[16] मंजीर, पृष्ठ 47, गिरिजा कुमार माथुर
[17] वही, पृष्ठ 96
[18] वही, पृष्ठ 90
[19] वही, पृष्ठ 84
[20] वही, पृष्ठ 95
[21] वही, पृष्ठ 68
[22] बहुत बाकी है (छवि के बंधन), पृष्ठ 1–8, भारत भूषण अग्रवाल
[23] बहुत बाकी है (छवि के बंधन), पृष्ठ 7, भारत भूषण अग्रवाल
[24] बहुत बाकी है (जागते रहो), पृष्ठ 33, भारत भूषण अग्रवाल
[25] वही, पृष्ठ 36–39
[26] वही, पृष्ठ 40–41
[27] नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 15, रामविलास शर्मा
[28] तारसप्तक, पृष्ठ 83, भारत भूषण अग्रवाल
[29] दृष्टव्य : 'अपने कवि से', पूंजीवादी ऐतिहासिकता, आदि कविताएं – बहुत बाकी है, पृष्ठ 42–43,
[30] तारसप्तक : 'वक्तव्य', पृष्ठ 49, नेमिचंद्र जैन, संपादक अज्ञेय
[31] नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 16, 'रामविलास शर्मा
[32] तारसप्तक, पृष्ठ 53, नेमिचंद्र जैन, संपादक अज्ञेय
[33] वही, पृष्ठ 61
[34] वही, पृष्ठ 63
[35] वही, पृष्ठ 64
[36] वही, पृष्ठ 70
[37] वही, पृष्ठ 54–55
[38] वही, पृष्ठ 68
[39] एकांत, पृष्ठ 14, नेमिचंद्र जैन
[40] तारसप्तक,पृष्ठ 241–42, 249, रामविलास शर्मा
[41] रूप तरंग : 'परिचय', पृष्ठ 10, रघुनाथ विनायक तावसे